28 सितंबर, 1907—23 मार्च, 1931

दस्तावेज़

पुस्तिका सीरीज़-90

प्रकाशक :

***isd* इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी**

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस, 62-ए,

लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067

टेलीफोन : 091-011-26177904, टेलीफैक्स : 091-011-26177904

ई-मेल : prakashan.isd@gmail.com, notowar.isd@gmail.com

वेबसाइट : www.isd.net.in

प्रकाशन वर्ष : 2020

हमारे हिंदी के अध्यापक द्विवेदी जी हमें सिर्फ हिंदी नहीं पढ़ाते थे बल्कि दुनिया-जहान की बातें करते थे। एक दिन रूसी क्रांति के बारे में बात करते-करते हमारे एक सहपाठी से पूछ बैठे कि अपने मुल्क के किसी इंक़लाबी का नाम बताओ। वो झिझका और उसके मुंह से निकल गया जैसे कि भगत-वगत सिंह। इस पर वो बिगड़ गए और डांटकर बोले कि तुम भगत सिंह का नाम आदर से नहीं ले सकते। तुम्हें मालूम है कि वह नवयुवक क्या चीज़ था। तुमसे सिर्फ दस साल बड़ा रहा होगा जब उसने अपने उसूलों के लिए फांसी का फंदा चूमा और शहीद हो गया। इसके बाद वो चुप हो गए और देर तक इसी हालत में रहे और फिर कहने लगे कि गलती हमारी है। हमने अपनी नई पीढ़ी को भगत सिंह के बारे में बताया ही नहीं। सिर्फ कैलेंडरों पर उनकी तस्वीर छापते रहें। उस दिन कक्षा में वो सिर्फ भगत सिंह की बातें करते रहे और फांसी से एक दिन पहले उनके आख़िरी ख़त का भी ज़िक्र किया। द्विवेदी जी उर्दू भी बहुत अच्छी जानते थे और भगत सिंह के हवाले से मजरूह का ये शेर मैंने पहली बार उसी रोज़ उनसे सुना था—

सुतूने दार पे रखते चलो सरों के चिराग़
जहां तलक ये सितम की सियाह रात चले।

इस छोटी-सी घटना के उल्लेख के बाद शहीद भगत सिंह के कुछ निबंधों पर आधारित अपनी पुस्तिका सीरिज़ के इस संकलन के लिए शायद किसी भूमिका की आवश्यकता न हो।

युवक!

('युवक!' शीर्षक से शहीद-ए-आज़म भगतसिंह का यह लेख 'साप्ताहिक मतवाला' (वर्ष : 2, अंक सं. 36, 16 मई, 1925) में बलवन्त सिंह के नाम से छपा था। इस लेख की चर्चा 'मतवाला' के सम्पादकीय कर्म से जुड़े आचार्य शिवपूजन सहाय की डायरी में भी मिलती है। लेख से पूर्व यहाँ 'आलोचना' में प्रकाशित डायरी के उस अंश को भी उद्धृत किया जा रहा है।—स.)

सन्ध्या समय सम्मेलन भवन के रंगमंच पर देशभक्त की स्मृति में सभा हुई। ...भगतसिंह ने 'मतवाला' (कलकत्ता) में एक लेख लिखा था : जिसको सँवार-सुधार कर मैंने छापा था और उसे पुस्तक भण्डार द्वारा प्रकाशित 'युवक साहित्य' में संगृहीत भी मैंने ही किया था। वह लेख बलवन्त सिंह के नाम से लिखा था। क्रांतिकारी लेख प्राय: गुमनाम लिखते थे। यह रहस्य किसी को ज्ञात नहीं। वह लेख युवक-विषयक था। वह लाहौर से उन्होंने भेजा था। असली नाम की जगह 'बलवंत सिंह' ही छापने को लिखा था।

—(आचार्य शिवपूजन सहाय की डायरी के अंश,
23 मार्च, पृष्ठ 28, आलोचना-67/वर्ष 32/अक्तूबर-दिसंबर, 1983)

युवावस्था मानव-जीवन का वसन्तकाल है। उसे पाकर मनुष्य मतवाला हो जाता है। हजारों बोतल का नशा छा जाता है। विधाता की दी हुई सारी शक्तियाँ सहस्र धारा होकर फूट पड़ती हैं। मदांध मातंग की तरह निरंकुश, वर्षाकालीन शोणभद्र की तरह दुर्द्धर्ष, प्रलयकालीन प्रबल प्रभंजन की तरह प्रचण्ड, नवागत वसन्त की प्रथम मल्लिका कलिका की तरह कोमल, ज्वालामुखी की तरह उच्छृंखल और भैरवी-संगीत की तरह मधुर युवावस्था है। उज्जवल प्रभात की शोभा, स्निग्ध सन्ध्या की छटा, शरच्चन्द्रिका की माधुरी ग्रीष्म-मध्याह्न का उत्ताप और भाद्रपदी अमावस्या के अर्द्धरात्र की भीषणता युवावस्था में निहित है। जैसे क्रांतिकारी की

जेब में बमगोला, षड्यंत्री की असटी में भरा-भराया तमंचा, रण-रस-रसिक वीर के हाथ में खड्ग, वैसे ही मनुष्य की देह में युवावस्था। 16 से 25 वर्ष तक हाड़-चाम के सन्दूक में संसार-भर के हाहाकारों को समेटकर विधाता बन्द कर देता है। दस बरस तक यह झाँझरी नैया मँझधार तूफान में डगमगाती तहती है। युवावस्था देखने में तो शस्यश्यामला वसुन्धरा से भी सुन्दर है, पर इसके अन्दर भूकम्प की-सी भयंकरता भरी हुई है। इसीलिए युवावस्था में मनुष्य के लिए केवल दो ही मार्ग हैं—वह चढ़ सकता है उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर, वह गिर सकता है अध:पात के अंधेरे खन्दक में। चाहे तो त्यागी हो सकता है युवक, चाहे तो विलासी बन सकता है युवक। वह देवता बन सकता है, तो पिशाच भी बन सकता है। वही संसार को त्रस्त कर सकता है, वही संसार को अभयदान दे सकता है। संसार में युवक का ही साम्राज्य है। युवक के कीर्तिमान से संसार का इतिहास भरा पड़ा है। युवक ही रणचण्डी के ललाट की रेखा है। युवक स्वदेश की यश-दुन्दुभि का तुमुल निनाद है। युवक ही स्वदेश की विजय-वैजयंती का सुदृढ़ दण्ड है। वह महाभारत के भीष्मपर्व की पहली ललकार के समान विकराल है, प्रथम मिलन के स्फीत चुम्बन की तरह सरस है, रावण के अहंकार की तरह निर्भीक है, प्रह्लाद के सत्याग्रह की तरह दृढ़ और अटल है। अगर किसी विशाल हृदय की आवश्यकता हो, तो युवकों के हृदय टटोलो। अगर किसी आत्मत्यागी वीर की चाह हो, तो युवकों से माँगो। रसिकता उसी के बाँटे पड़ी है। भावुकता पर उसी का सिक्का है। वह छन्द शास्त्र से अनभिज्ञ होने पर भी प्रतिभाशाली कवि है। कवि भी उसी के हृदयारविन्द का मधुप है। वह रसों की परिभाषा नहीं जानता, पर वह कविता का सच्चा मर्मज्ञ है। सृष्टि की एक विषम समस्या है युवक। ईश्वरीय रचना-कौशल का एक उत्कृष्ट नमूना है युवक। सन्ध्या समय वह नदी के तट पर घण्टों बैठा रहता है। क्षितिज की ओर बढ़ते जाने वाले रक्त-रश्मि सूर्यदेव को आकृष्ट नेत्रों से देखता रह जाता है। उस पार से आती हुई संगीत-लहरी के मन्द प्रवाह में तल्लीन हो जाता है। विचित्र है उसका जीवन। अद्भुत है उसका साहस। अमोघ है उसका उत्साह।

वह निश्चिन्त है, असावधान है। लगन लग गयी है, तो रात-भर जागना उसके बाएं हाथ का खेल है, जेठ की दुपहरी चैत की चांदनी है, सावन-भादों की झड़ी मंगलोत्सव की पुष्पवृष्टि है, श्मशान की निस्तब्धता, उद्यान का विहंग-कल कूजन है। वह इच्छा करे तो समाज और जाति को उद्‌बुद्ध कर दे, देश की लाली रख ले, राष्ट्र का मुखोज्ज्वल कर दे, बड़े-बड़े साम्राज्य उलट डाले। पतितों के उत्थान और संसार के उद्धारक सूत्र उसी के हाथ में हैं। वह इस विशाल विश्व

रंगस्थल का सिद्धहस्त खिलाड़ी है।

अगर रक्त की भेंट चाहिए, तो सिवा युवक के कौन देगा ?अगर तुम बलिदान चाहते हो, तो तुम्हें युवक की ओर देखना पड़ेगा। प्रत्येक जाति के भाग्यविधाता युवक ही तो होते हैं। एक पाश्चात्य पंडित ने ठीक ही कहा है—It is an established truism that youngmen of today are the countrymen of tomorrow holding in their hands the high destinies of the land. They are the seeds that spring and bear fruit. भावार्थ यह कि आज के युवक ही कल के देश के भाग्य-निर्माता हैं। वे ही भविष्य के सफलता के बीज हैं।

संसार के इतिहासों के पन्ने खोलकर देख लो, युवक के रक्त से लिखे हुए अमर सन्देश भरे पड़े हैं। संसार की क्रांतियों और परिवर्तनों के वर्णन छाँट डालो, उनमें केवल ऐसे युवक ही मिलेंगे, जिन्हें बुद्धिमानों ने 'पागल छोकड़े' अथवा 'पथभ्रष्ट' कहा है। पर जो सिड़ी हैं, वे क्या ख़ाक समझेंगे कि स्वदेशाभिमान से उन्मत्त होकर अपनी लोथों से किले की खाइयों को पाट देने वाले जापानी युवक किस फौलाद के टुकड़े थे। सच्चा युवक तो बिना झिझक के मृत्यु का आलिंगन करता है, चौखी संगीनों के सामने छाती खोलकर डट जाता है, तोप के मुँह पर बैठकर भी मुस्कुराता ही रहता है, बेड़ियों की झनकार पर राष्ट्रीय गान गाता है और फाँसी के तख्ते पर अट्टहासपूर्वक आरूढ़ हो जाता है। फाँसी के दिन युवक का ही वजन बढ़ता है, जेल की चक्की पर युवक ही उद्‌बोधन मन्त्र गाता है, कालकोठरी के अन्धकार में धँसकर ही वह स्वदेश को अन्धकार के बीच से उबारता है। अमेरिका के युवक दल के नेता पैट्रिक हेनरी ने अपनी ओजस्विनी वक्तृता में एक बार कहा था—Life is a dearer outside the prison walls, but it is immeasurably dearer within the prison-cells, where it is the price paid for the freedom's fight. अर्थात् जेल की दीवारों से बाहर की जिन्दगी बड़ी महँगी है, पर जेल की काल कोठरियों की जिन्दगी और भी महँगी है क्योंकि वहाँ यह स्वतन्त्रता-संग्राम के मूल्य रूप में चुकाई जाती है।

जब ऐसा सजीव नेता है, तभी तो अमेरिका के युवकों में यह ज्वलन्त घोषणा करने का साहस भी है कि, "We believe that when a Government becomes a destructive of the natural right of man, it is the man's duty to destroy that Government." अर्थात् अमेरिका के युवक विश्वास करते हैं कि जन्मसिद्ध अधिकारों को पद-दलित करने वाली सत्ता का विनाश करना मनुष्य का कर्तव्य है।

ऐ भारतीय युवक! तू क्यों ग़फ़लत की नींद में पड़ा बेखबर सो रहा है। उठ, आँखें खोल, देख, प्राची-दिशा का ललाट सिन्दूर-रंजित हो उठा। अब अधिक मत सो। सोना हो तो अनंत निद्रा की गोद में जाकर सो रह। कापुरुषता की गोद में क्यों सोता है? माया-मोह-ममता का त्याग कर गरज उठ—

"Farewell Farewell My true Love
The army is on move;
And if I stayed with you Love,
A coward I shall prove."

तेरी माता, तेरी प्रातःस्मरणीया, तेरी परम वन्दनीया, तेरी जगदम्बा, तेरी अन्नपूर्णा, तेरी त्रिशूलधारिणी, तेरी सिंहवाहिनी, तेरी शस्यश्यामलांचला आज फूट-फूटकर रो रही है। क्या उसकी विकलता तुझे तनिक भी चंचल नहीं करती? धिक्कार है तेरी निर्जीवता पर! तेरे पितर भी नतमस्तक हैं इस नपुंसकत्व पर! यदि अब भी तेरे किसी अंग में कुछ हया बाकी हो, तो उठकर माता के दूध की लाज रख, उसके उद्धार का बीड़ा उठा, उसके आँसुओं की एक-एक बूँद की सौगन्ध ले, उसका बेड़ा पार कर और बोल मुक्त कण्ठ से—वंदेमातरम।

इंक़लाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है

असेम्बली बम काण्ड पर यह अपील भगतसिंह द्वारा जनवरी, 1930 में हाई कोर्ट में की गयी थी। इसी अपील में ही उनका यह प्रसिद्द वक्तव्य था : ''पिस्तौल और बम इंक़लाब नहीं लाते, बल्कि इंक़लाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है और यही चीज थी, जिसे हम प्रकट करना चाहते थे।''

माई लॉर्ड, हम न वकील हैं, न अंग्रेजी विशेषज्ञ और न हमारे पास डिगरियां हैं। इसलिए हमसे शानदार भाषणों की आशा न की जाए। हमारी प्रार्थना है कि हमारे बयान की भाषा संबंधी त्रुटियों पर ध्यान न देते हुए, उसके वास्तविक अर्थ को समझने का प्रयत्न किया जाए। दूसरे तमाम मुद्दों को अपने वकीलों पर छोड़ते हुए मैं स्वयं एक मुद्दे पर अपने विचार प्रकट करूंगा। यह मुद्दा इस मुकदमे में बहुत महत्वपूर्ण है। मुद्दा यह है कि हमारी नीयत क्या थी और हम किस हद तक अपराधी हैं।

विचारणीय यह है कि असेंबली में हमने जो दो बम फेंके, उनसे किसी व्यक्ति को शारीरिक या आर्थिक हानि नहीं हुई। इस दृष्टिकोण से हमें जो सजा दी गई है, वह कठोरतम ही नहीं, बदला लेने की भावना से भी दी गई है। यदि दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाए, तो जब तक अभियुक्त की मनोभावना का पता न लगाया जाए, उसके असली उद्देश्य का पता ही नहीं चल सकता। यदि उद्देश्य को पूरी तरह भुला दिया जाए, तो किसी के साथ न्याय नहीं हो सकता, क्योंकि उद्देश्य को नजरों में न रखने पर संसार के बड़े-बड़े सेनापति भी साधारण हत्यारे नजर

आएंगे। सरकारी कर वसूल करने वाले अधिकारी चोर, जालसाज दिखाई देंगे और न्यायाधीशों पर भी कत्ल करने का अभियोग लगेगा। इस तरह सामाजिक व्यवस्था और सभ्यता खून-खराबा, चोरी और जालसाजी बनकर रह जाएगी। यदि उद्देश्य की उपेक्षा की जाए, तो किसी हुकूमत को क्या अधिकार है कि समाज के व्यक्तियों से न्याय करने को कहे? यदि उद्देश्य की उपेक्षा की जाए, तो हर धर्म प्रचारक झूठ का प्रचारक दिखाई देगा और हरेक पैगंबर पर अभियोग लगेगा कि उसने करोड़ों भोले और अनजान लोगों को गुमराह किया। यदि उद्देश्य को भुला दिया जाए, तो हजरत ईसा मसीह गड़बड़ी फैलाने वाले, शांति भंग करने वाले और विद्रोह का प्रचार करने वाले दिखाई देंगे और कानून के शब्दों में वह खतरनाक व्यक्तित्व माने जाएंगे... अगर ऐसा हो, तो मानना पड़ेगा कि इन्सानियत की कुरबानियां, शहीदों के प्रयत्न, सब बेकार रहे और आज भी हम उसी स्थान पर खड़े हैं, जहां आज से बीस शताब्दियों पहले थे। कानून की दृष्टि से उद्देश्य का प्रश्न खासा महत्व रखता है।

माई लॉर्ड, इस दशा में मुझे यह कहने की आज्ञा दी जाए कि जो हुकूमत इन कमीनी हरकतों में आश्रय खोजती है, जो हुकूमत व्यक्ति के कुदरती अधिकार छीनती है, उसे जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं। अगर यह कायम है, तो आरज़ी (अस्थायी) तौर पर और हजारों बेगुनाहों का खून इसकी गर्दन पर है। यदि कानून उद्देश्य नहीं देखता, तो न्याय नहीं हो सकता और न ही स्थायी शांति स्थापित हो सकती है। आटे में संखिया मिलाना जुर्म नहीं, यदि उसका उद्देश्य चूहों को मारना हो। लेकिन यदि इससे किसी आदमी को मार दिया जाए, तो कत्ल का अपराध बन जाता है। लिहाजा, ऐसे कानूनों को, जो युक्ति (दलील) पर आधारित नहीं और न्याय के सिद्धांत के विरुद्ध है, उन्हें समाप्त कर देना चाहिए। ऐसे ही न्याय विरोधी कानूनों के कारण बड़े-बड़े श्रेष्ठ बौद्धिक लोगों ने बगावत के कार्य किए हैं।

हमारे मुकदमे के तथ्य बिल्कुल सादा हैं। 8 अप्रैल, 1929 को हमने सेंट्रल असेंबली में दो बम फेंके। उनके धमाके से चंद लोगों को मामूली खरोंचें आईं। चेंबर में हंगामा हुआ, सैकड़ों दर्शक और सदस्य बाहर निकल गए। कुछ देर बाद खामोशी छा गई। मैं और साथी बीके दत्त खामोशी के साथ दर्शक गैलरी में बैठे रहे और हमने स्वयं अपने को प्रस्तुत किया कि हमें गिरफ़्तार कर लिया जाए। हमें गिरफ़्तार कर लिया गया। अभियोग लगाए गए और हत्या करने के प्रयत्न के अपराध में हमें सजा दी गई। लेकिन बमों से 4-5 आदमियों को मामूली चोटें आईं और एक बेंच को मामूली नुकसान पहुंचा। जिन्होंने यह अपराध किया,

उन्होंने बिना किसी किस्म के हस्तक्षेप के अपने आपको गिरफ़्तारी के लिए पेश कर दिया। सेशन जज ने स्वीकार किया कि यदि हम भागना चाहते, तो भागने में सफल हो सकते थे। हमने अपना अपराध स्वीकार किया और अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए बयान दिया। हमें सजा का भय नहीं है। लेकिन हम यह नहीं चाहते कि हमें गलत समझा जाए। हमारे बयान से कुछ पैराग्राफ काट दिए गए हैं, यह वास्तविकता की दृष्टि से हानिकारक है।

समग्र रूप में हमारे वक्तव्य के अध्ययन से साफ होता है कि हमारे दृष्टिकोण से हमारा देश एक नाजुक दौर से गुजर रहा है। इस दशा में काफी ऊंची आवाज में चेतावनी देने की जरूरत थी और हमने अपने विचारानुसार चेतावनी दी है। संभव है कि हम गलती पर हों, हमारा सोचने का ढंग जज महोदय के सोचने के ढंग से भिन्न हो, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हमें अपने विचार प्रकट करने की स्वीकृति न दी जाए और गलत बातें हमारे साथ जोडी जाएं।

'इंक़लाब जिंदाबाद और साम्राज्यवाद मुर्दाबाद' के संबंध में हमने जो व्याख्या अपने बयान में दी, उसे उड़ा दिया गया है; हालांकि यह हमारे उद्देश्य का खास भाग है। इंक़लाब जिंदाबाद से हमारा वह उद्देश्य नहीं था, जो आमतौर पर गलत अर्थ में समझा जाता है। पिस्तौल और बम इंक़लाब नहीं लाते, बल्कि इंक़लाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है और यही चीज थी, जिसे हम प्रकट करना चाहते थे। हमारे इंक़लाब का अर्थ पूंजीवादी युद्धों की मुसीबतों का अंत करना है। मुख्य उद्देश्य और उसे प्राप्त करने की प्रक्रिया समझे बिना किसी के संबंध में निर्णय देना उचित नहीं। गलत बातें हमारे साथ जोड़ना साफ अन्याय है।

इसकी चेतावनी देना बहुत आवश्यक था। बेचैनी रोज-रोज बढ़ रही है। यदि उचित इलाज न किया गया, तो रोग खतरनाक रूप ले लेगा। कोई भी मानवीय शक्ति इसकी रोकथाम न कर सकेगी। अब हमने इस तूफान का रुख बदलने के लिए यह कार्रवाई की। हम इतिहास के गंभीर अध्येता हैं। हमारा विश्वास है कि यदि सत्ताधारी शक्तियां ठीक समय पर सही कार्रवाई करतीं, तो फ्रांस और रूस की खूनी क्रांतियां न बरस पड़तीं। दुनिया की कई बड़ी-बड़ी हुकूमतें विचारों के तूफान को रोकते हुए खून-खराबे के वातावरण में डूब गईं। सत्ताधारी लोग परिस्थितियों के प्रवाह को बदल सकते हैं। हम पहले चेतावनी देना चाहते थे। यदि हम कुछ व्यक्तियों की हत्या करने के इच्छुक होते, तो हम अपने मुख्य उद्देश्य में विफल हो जाते। माई लॉर्ड, इस नीयत और उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए हमने कार्रवाई की और इस कार्रवाई के परिणाम हमारे बयान का

समर्थन करते हैं। एक और नुक्ता स्पष्ट करना आवश्यक है। यदि हमें बमों की ताकत के संबंध में कतई ज्ञान न होता, तो हम पं. मोतीलाल नेहरू, श्री केलकर, श्री जयकर और श्री जिन्ना जैसे सम्माननीय राष्ट्रीय व्यक्तियों की उपस्थिति में क्यों बम फेंकते? हम नेताओं के जीवन किस तरह खतरे में डाल सकते थे? हम पागल तो नहीं हैं? और अगर पागल होते, तो जेल में बंद करने के बजाय हमें पागलखाने में बंद किया जाता। बमों के संबंध में हमें निश्चित जानकारी थी। उसी कारण हमने ऐसा साहस किया। जिन बेंचों पर लोग बैठे थे, उन पर बम फेंकना कहीं आसान काम था, खाली जगह पर बमों को फेंकना निहायत मुश्किल था। अगर बम फेंकने वाले सही दिमागों के न होते या वे परेशान होते, तो बम खाली जगह के बजाय बेंचों पर गिरते। तो मैं कहूंगा कि खाली जगह के चुनाव के लिए जो हिम्मत हमने दिखाई, उसके लिए हमें इनाम मिलना चाहिए। इन हालात में, माई लॉर्ड, हम सोचते हैं कि हमें ठीक तरह समझा नहीं गया। आपकी सेवा में हम सजाओं में कमी कराने नहीं आए, बल्कि अपनी स्थिति स्पष्ट करने आए हैं। हम चाहते हैं कि न तो हमसे अनुचित व्यवहार किया जाए, न ही हमारे संबंध में अनुचित राय दी जाए। सजा का सवाल हमारे लिए गौण है।

साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज

1919 के जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के बाद ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिक दंगों का खूब प्रचार शुरु किया। इसके असर से 1924 में कोहाट में बहुत ही अमानवीय ढंग से हिंदू-मुस्लिम दंगे हुए। इसके बाद राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना में साम्प्रदायिक दंगों पर लम्बी बहस चली। इन्हें समाप्त करने की जरूरत तो सबने महसूस की, लेकिन कांग्रेसी नेताओं ने हिंदू-मुस्लिम नेताओं में सुलहनामा लिखाकर दंगों को रोकने के यत्न किये।

इस समस्या के निश्चित हल के लिए क्रांतिकारी आन्दोलन ने अपने विचार प्रस्तुत किये। प्रस्तुत लेख जून, 1928 के 'किरती' में छपा। यह लेख इस समस्या पर शहीद भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों का सार है।—सं.

भारतवर्ष की दशा इस समय बड़ी दयनीय है। एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायियों के जानी दुश्मन हैं। अब तो एक धर्म का होना ही दूसरे धर्म का कट्टर शत्रु होना है। यदि इस बात का अभी यकीन न हो तो लाहौर के ताजा दंगे ही देख लें। किस प्रकार मुसलमानों ने निर्दोष सिखों, हिंदुओं को मारा है और किस प्रकार सिखों ने भी वश चलते कोई कसर नहीं छोड़ी है। यह मार-काट इसलिए नहीं की गयी कि फलाँ आदमी दोषी है, वरन इसलिए कि फलाँ आदमी हिंदू है या सिख है या मुसलमान है। बस किसी व्यक्ति का सिख या हिंदू होना मुसलमानों द्वारा मारे जाने के लिए काफी था और इसी तरह किसी व्यक्ति का मुसलमान होना ही उसकी जान लेने के लिए पर्याप्त तर्क था। जब स्थिति ऐसी हो तो हिन्दुस्तान का ईश्वर ही मालिक है।

ऐसी स्थिति में हिन्दुस्तान का भविष्य बहुत अन्धकारमय नजर आता है। इन 'धर्मों' ने हिन्दुस्तान का बेड़ा गर्क कर दिया है। और अभी पता नहीं कि यह धार्मिक दंगे भारतवर्ष का पीछा कब छोड़ेंगे। इन दंगों ने संसार की नजरों में भारत को बदनाम कर दिया है। और हमने देखा है कि इस अन्धविश्वास के बहाव में सभी बह जाते हैं। कोई बिरला ही हिंदू, मुसलमान या सिख होता है, जो अपना दिमाग ठण्डा रखता है, बाकी सब के सब धर्म के यह नामलेवा अपने नामलेवा धर्म के रौब को कायम रखने के लिए डण्डे लाठियाँ, तलवारें-छुरे हाथ में पकड़ लेते हैं और आपस में सर-फोड़-फोड़कर मर जाते हैं। बाकी कुछ तो फाँसी चढ़ जाते हैं और कुछ जेलों में फेंक दिये जाते हैं। इतना रक्तपात होने पर इन 'धर्मजनों' पर अंग्रेजी सरकार का डण्डा बरसता है और फिर इनके दिमाग का कीड़ा ठिकाने आ जाता है।

यहाँ तक देखा गया है, इन दंगों के पीछे साम्प्रदायिक नेताओं और अखबारों का हाथ है। इस समय हिन्दुस्तान के नेताओं ने ऐसी लीद की है कि चुप ही भली। वही नेता जिन्होंने भारत को स्वतन्त्र कराने का बीड़ा अपने सिरों पर उठाया हुआ था और जो 'समान राष्ट्रीयता' और 'स्वराज्य-स्वराज्य' के दमगजे मारते नहीं थकते थे, वही या तो अपने सिर छिपाये चुपचाप बैठे हैं या इसी धर्मान्धता के बहाव में बह चले हैं। सिर छिपाकर बैठने वालों की संख्या भी क्या कम है? लेकिन ऐसे नेता जो साम्प्रदायिक आन्दोलन में जा मिले हैं, जमीन खोदने से सैकड़ों निकल आते हैं। जो नेता हृदय से सबका भला चाहते हैं, ऐसे बहुत ही कम हैं। और साम्प्रदायिकता की ऐसी प्रबल बाढ़ आयी हुई है कि वे भी इसे रोक नहीं पा रहे। ऐसा लग रहा है कि भारत में नेतृत्व का दिवाला पिट गया है।

दूसरे सज्जन जो साम्प्रदायिक दंगों को भड़काने में विशेष हिस्सा लेते रहे हैं, अखबार वाले हैं। पत्रकारिता का व्यवसाय, किसी समय बहुत ऊँचा समझा जाता था। आज बहुत ही गन्दा हो गया है। यह लोग एक-दूसरे के विरुद्ध बड़े मोटे-मोटे शीर्षक देकर लोगों की भावनाएँ भड़काते हैं और परस्पर सिर फुटौव्वल करवाते हैं। एक-दो जगह ही नहीं, कितनी ही जगहों पर इसलिए दंगे हुए हैं कि स्थानीय अखबारों ने बड़े उत्तेजनापूर्ण लेख लिखे हैं। ऐसे लेखक बहुत कम है जिनका दिल व दिमाग ऐसे दिनों में भी शान्त रहा हो।

अखबारों का असली कर्त्तव्य शिक्षा देना, लोगों से संकीर्णता निकालना, साम्प्रदायिक भावनाएँ हटाना, परस्पर मेल-मिलाप बढ़ाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता बनाना था लेकिन इन्होंने अपना मुख्य कर्त्तव्य अज्ञान फैलाना, संकीर्णता

का प्रचार करना, साम्प्रदायिक बनाना, लड़ाई-झगड़े करवाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता को नष्ट करना बना लिया है। यही कारण है कि भारतवर्ष की वर्तमान दशा पर विचार कर आंखों से रक्त के आँसू बहने लगते हैं और दिल में सवाल उठता है कि 'भारत का बनेगा क्या?'

जो लोग असहयोग के दिनों के जोश व उभार को जानते हैं, उन्हें यह स्थिति देख रोना आता है। कहाँ थे वे दिन कि स्वतन्त्रता की झलक सामने दिखाई देती थी और कहाँ आज यह दिन कि स्वराज्य एक सपना मात्र बन गया है। बस यही तीसरा लाभ है, जो इन दंगों से अत्याचारियों को मिला है। जिसके अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया था, कि आज गयी, कल गयी वही नौकरशाही आज अपनी जड़ें इतनी मजबूत कर चुकी हैं कि उसे हिलाना कोई मामूली काम नहीं है।

यदि इन साम्प्रदायिक दंगों की जड़ खोजें तो हमें इसका कारण आर्थिक ही जान पड़ता है। असहयोग के दिनों में नेताओं व पत्रकारों ने ढेरों कुर्बानियाँ दीं। उनकी आर्थिक दशा बिगड़ गयी थी। असहयोग आन्दोलन के धीमा पड़ने पर नेताओं पर अविश्वास-सा हो गया जिससे आजकल के बहुत से साम्प्रदायिक नेताओं के धन्धे चौपट हो गये। विश्व में जो भी काम होता है, उसकी तह में पेट का सवाल जरूर होता है। कार्ल मार्क्स के तीन बड़े सिद्धान्तों में से यह एक मुख्य सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्त के कारण ही तबलीग, तनकीद, शुद्धि आदि संगठन शुरू हुए और इसी कारण से आज हमारी ऐसी दुर्दशा हुई, जो अवर्णनीय है।

बस, सभी दंगों का इलाज यदि कोई हो सकता है तो वह भारत की आर्थिक दशा में सुधार से ही हो सकता है दरअसल भारत के आम लोगों की आर्थिक दशा इतनी खराब है कि एक व्यक्ति दूसरे को चवन्नी देकर किसी और को अपमानित करवा सकता है। भूख और दुख से आतुर होकर मनुष्य सभी सिद्धान्त ताक पर रख देता है। सच है, मरता क्या न करता। लेकिन वर्तमान स्थिति में आर्थिक सुधार होना अत्यन्त कठिन है क्योंकि सरकार विदेशी है और लोगों की स्थिति को सुधरने नहीं देती। इसीलिए लोगों को हाथ धोकर इसके पीछे पड़ जाना चाहिये और जब तक सरकार बदल न जाये, चैन की सांस न लेना चाहिए।

लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की जरूरत है। गरीब, मेहनतकशों व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं। इसलिए तुम्हें इनके हथकंडों से बचकर रहना चाहिए। संसार के सभी गरीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार

एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताकत अपने हाथों में लेने का प्रयत्न करो। इन यत्नों से तुम्हारा नुकसान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी जंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।

जो लोग रूस का इतिहास जानते हैं, उन्हें मालूम है कि जार के समय वहाँ भी ऐसी ही स्थितियाँ थीं वहाँ भी कितने ही समुदाय थे जो परस्पर जूत-पतांग करते रहते थे। लेकिन जिस दिन से वहाँ श्रमिक-शासन हुआ है, वहाँ नक्शा ही बदल गया है। अब वहाँ कभी दंगे नहीं हुए। अब वहाँ सभी को 'इन्सान' समझा जाता है, 'धर्मजन' नहीं। जार के समय लोगों की आर्थिक दशा बहुत ही खराब थी। इसलिए सब दंगे-फसाद होते थे। लेकिन अब रूसियों की आर्थिक दशा सुधर गयी है और उनमें वर्ग-चेतना आ गयी है इसलिए अब वहाँ से कभी किसी दंगे की खबर नहीं आयी।

इन दंगों में वैसे तो बड़े निराशाजनक समाचार सुनने में आते हैं, लेकिन कलकत्ते के दंगों में एक बात बहुत खुशी की सुनने में आयी। वह यह कि वहाँ दंगों में ट्रेड यूनियन के मजदूरों ने हिस्सा नहीं लिया और न ही वे परस्पर गुत्थमगुत्था ही हुए, वरन् सभी हिंदू-मुसलमान बड़े प्रेम से कारखानों आदि में उठते-बैठते और दंगे रोकने के भी यत्न करते रहे। यह इसलिए कि उनमें वर्ग-चेतना थी और वे अपने वर्गहित को अच्छी तरह पहचानते थे। वर्गचेतना का यही सुन्दर रास्ता है, जो साम्प्रदायिक दंगे रोक सकता है।

यह खुशी का समाचार हमारे कानों को मिला है कि भारत के नवयुवक अब वैसे धर्मों से जो परस्पर लड़ाना व घृणा करना सिखाते हैं, तंग आकर हाथ धो रहे हैं। उनमें इतना खुलापन आ गया है कि वे भारत के लोगों को धर्म की नजर से-हिंदू, मुसलमान या सिख रूप में नहीं, वरन् सभी को पहले इन्सान समझते हैं, फिर भारतवासी। भारत के युवकों में इन विचारों के पैदा होने से पता चलता है कि भारत का भविष्य सुनहला है। भारतवासियों को इन दंगों आदि को देखकर घबराना नहीं चाहिए। उन्हें यत्न करना चाहिए कि ऐसा वातावरण ही न बने, और दंगे हों ही नहीं।

1914-15 के शहीदों ने धर्म को राजनीति से अलग कर दिया था। वे समझते थे कि धर्म व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है इसमें दूसरे का कोई दखल नहीं। न ही इसे राजनीति में घुसाना चाहिए क्योंकि यह सरबत को मिलकर एक जगह काम नहीं करने देता। इसलिए गदर पार्टी जैसे आन्दोलन एकजुट व एकजान रहे, जिसमें सिख बढ़-चढ़कर फाँसियों पर चढ़े और हिंदू मुसलमान भी पीछे नहीं रहे।

इस समय कुछ भारतीय नेता भी मैदान में उतरे हैं जो धर्म को राजनीति से अलग करना चाहते हैं। झगड़ा मिटाने का यह भी एक सुन्दर इलाज है और हम इसका समर्थन करते हैं।

यदि धर्म को अलग कर दिया जाये तो राजनीति पर हम सभी इकट्ठे हो सकते है। धर्मों में हम चाहे अलग-अलग ही रहें।

हमारा ख्याल है कि भारत के सच्चे हमदर्द हमारे बताये इलाज पर जरूर विचार करेंगे और भारत का इस समय जो आत्मघात हो रहा है, उससे हमे बचा लेंगे।

आभार : यह फाइल आरोही, ए-2/128, सैक्टर-11, रोहिणी, नई दिल्ली—110085 द्वारा प्रकाशित संकलन 'इंक़लाब ज़िन्दाबाद' (सम्पादक : राजेश उपाध्याय एवं मुकेश मानस) के मूल फाइल से ली गयी है।

अछूत समस्या

काकीनाडा में 1923 मे कांग्रेस-अधिवेशन हुआ। मौलाना मोहम्मद अली जौहर ने अपने अध्यक्षीय भाषण मे आजकल की अनुसूचित जातियों को, जिन्हें उन दिनों 'अछूत' कहा जाता था, हिंदू और मुस्लिम मिशनरी संस्थाओं में बाँट देने का सुझाव दिया। हिंदू और मुस्लिम अमीर लोग इस वर्गभेद को पक्का करने के लिए धन देने को तैयार थे।

इस प्रकार अछूतों के यह 'दोस्त' उन्हें धर्म के नाम पर बाँटने की कोशिशें करते थे। उसी समय जब इस मसले पर बहस का वातावरण था, भगतसिंह ने 'अछूत का सवाल' नामक लेख लिखा। इस लेख में श्रमिक वर्ग की शक्ति व सीमाओं का अनुमान लगाकर उसकी प्रगति के लिए ठोस सुझाव दिये गये हैं। भगतसिंह का यह लेख जून, 1928 के 'किरती' में विद्रोही नाम से प्रकाशित हुआ था।—सं.

हमारे देश जैसे बुरे हालात किसी दूसरे देश के नहीं हुए। यहाँ अजब-अजब सवाल उठते रहते हैं। एक अहम सवाल अछूत-समस्या है। समस्या यह है कि 30 करोड़ की जनसंख्या वाले देश में जो 6 करोड़ लोग अछूत कहलाते हैं, उनके स्पर्श मात्र से धर्म भ्रष्ट हो जाएगा! उनके मन्दिरों में प्रवेश से देवगण नाराज हो उठेंगे! कुएं से उनके द्वारा पानी निकालने से कुआँ अपवित्र हो जाएगा! ये सवाल बीसवीं सदी में किए जा रहे हैं, जिन्हें कि सुनते ही शर्म आती है।

हमारा देश बहुत अध्यात्मवादी है, लेकिन हम मनुष्य को मनुष्य का दर्जा देते हुए भी झिझकते हैं जबकि पूर्णतया भौतिकवादी कहलाने वाला यूरोप कई सदियों से इन्कलाब की आवाज उठा रहा है। उन्होंने अमेरिका और फ्रांस की क्रांतियों के दौरान ही समानता की घोषणा कर दी थी। आज रूस ने भी हर प्रकार

का भेदभाव मिटा कर क्रांति के लिए कमर कसी हुई है। हम सदा ही आत्मा-परमात्मा के वजूद को लेकर चिन्तित होने तथा इस जोरदार बहस में उलझे हुए हैं कि क्या अछूत को जनेऊ दे दिया जाएगा? वे वेद-शास्त्र पढ़ने के अधिकारी हैं अथवा नहीं? हम उलाहना देते हैं कि हमारे साथ विदेशों में अच्छा सलूक नहीं होता। अंग्रेजी शासन हमें अंग्रजों के समान नहीं समझता। लेकिन क्या हमें यह शिकायत करने का अधिकार है?

सिन्ध के एक मुस्लिम सज्जन श्री नूर मुहम्मद ने, जो बम्बई कौंसिल के सदस्य हैं, इस विषय पर 1926 में खूब कहा—

"If the Hindu society refuses to allow other human beings, fellow creatures so that to attend public school, and if the president of local board representing so many lakhs of people in this house refuses to allow his fellows and brothers the elementary human right of having water to drink, what right have they to ask for more rights from the bureaucracy? Before we accuse people coming from other lands, we should see how we ourselves behave toward our own people. How can we ask for greater political rights when we ourselves deny elementary rights of human beings."

वे कहते हैं कि जब तुम एक इन्सान को पीने के लिए पानी देने से भी इनकार करते हो, जब तुम उन्हें स्कूल में भी पढ़ने नहीं देते तो तुम्हें क्या अधिकार है कि अपने लिए अधिक अधिकारों की माँग करो? जब तुम एक इन्सान को समान अधिकार देने से भी इनकार करते हो तो तुम अधिक राजनीतिक अधिकार माँगने के अधिकारी कैसे बन गए?

बात बिल्कुल खरी है। लेकिन यह क्योंकि एक मुस्लिम ने कही है इसलिए हिंदू कहेंगे कि देखो, वह उन अछूतों को मुसलमान बना कर अपने में शामिल करना चाहते हैं।

जब तुम उन्हें इस तरह पशुओं से भी गया-बीता समझोगे तो वह जरूर ही दूसरे धर्मों में शामिल हो जाएंगे, जिनमें उन्हें अधिक अधिकार मिलेंगे, जहाँ उनसे इन्सानों-जैसा व्यवहार किया जाएगा। फिर यह कहना कि देखो जी, ईसाई और मुसलमान हिंदू कौम को नुकसान पहुँचा रहे हैं, व्यर्थ होगा।

कितना स्पष्ट कथन है, लेकिन यह सुन कर सभी तिलमिला उठते हैं। ठीक इसी तरह की चिन्ता हिंदुओं को भी हुई। सनातनी पण्डित भी कुछ-न-कुछ इस

मसले पर सोचने लगे। बीच-बीच में बड़े 'युगांतरकारी' कहे जाने वाले भी शामिल हुए। पटना में हिंदू महासभा का सम्मेलन लाला लाजपतराय—जोकि अछूतों के बहुत पुराने समर्थक चले आ रहे हैं—की अध्यक्षता में हुआ, तो जोरदार बहस छिड़ी। अच्छी नोंक-झोंक हुई। समस्या यह थी कि अछूतों को यज्ञोपवीत धारण करने का हक है अथवा नहीं? तथा क्या उन्हें वेद-शास्त्रों का अध्ययन करने का अधिकार है? बड़े-बड़े समाज-सुधारक तमतमा गये, लेकिन लालाजी ने सबको सहमत कर दिया तथा यह दो बातें स्वीकृत कर हिंदू धर्म की लाज रख ली। वरना जरा सोचो, कितनी शर्म की बात होती। कुत्ता हमारी गोद में बैठ सकता है। हमारी रसोई में नि:संग फिरता है, लेकिन एक इन्सान का हमसे स्पर्श हो जाए तो बस धर्म भ्रष्ट हो जाता है। इस समय मालवीय जी जैसे बड़े समाज-सुधारक, अछूतों के बड़े प्रेमी और न जाने क्या-क्या पहले एक मेहतर के हाथों गले में हार डलवा लेते हैं, लेकिन कपड़ों सहित स्नान किये बिना स्वयं को अशुद्ध समझते हैं! क्या खूब यह चाल है! सबको प्यार करने वाले भगवान की पूजा करने के लिए मन्दिर बना है लेकिन वहाँ अछूत जा घुसे तो वह मन्दिर अपवित्र हो जाता है! भगवान रुष्ट हो जाता है! घर की जब यह स्थिति हो तो बाहर हम बराबरी के नाम पर झगड़ते अच्छे लगते हैं? तब हमारे इस रवैये में कृतघ्नता की भी हद पाई जाती है। जो निम्नतम काम करके हमारे लिए सुविधाओं को उपलब्ध कराते हैं उन्हें ही हम दुरदुराते हैं। पशुओं की हम पूजा कर सकते हैं, लेकिन इन्सान को पास नहीं बिठा सकते!

आज इस सवाल पर बहुत शोर हो रहा है। उन विचारों पर आजकल विशेष ध्यान दिया जा रहा है। देश में मुक्ति कामना जिस तरह बढ़ रही है, उसमें साम्प्रदायिक भावना ने और कोई लाभ पहुँचाया हो अथवा नहीं लेकिन एक लाभ जरूर पहुँचाया है। अधिक अधिकारों की माँग के लिए अपनी-अपनी कौमों की संख्या बढ़ाने की चिन्ता सबको हुई। मुस्लिमों ने जरा ज्यादा जोर दिया। उन्होंने अछूतों को मुसलमान बना कर अपने बराबर अधिकार देने शुरू कर दिए। इससे हिंदुओं के अहम को चोट पहुँची। स्पर्धा बढ़ी। फसाद भी हुए। धीरे-धीरे सिखों ने भी सोचा कि हम पीछे न रह जायें। उन्होंने भी अमृत छकाना आरम्भ कर दिया। हिंदू-सिखों के बीच अछूतों के जनेऊ उतारने या केश कटवाने के सवालों पर झगड़े हुए। अब तीनों कौमें अछूतों को अपनी-अपनी ओर खींच रही है। इसका बहुत शोर-शराबा है। उधर ईसाई चुपचाप उनका रुतबा बढ़ा रहे हैं। चलो, इस सारी हलचल से ही देश के दुर्भाग्य की लानत दूर हो रही है।

इधर जब अछूतों ने देखा कि उनकी वजह से इनमें फसाद हो रहे हैं तथा

उन्हें हर कोई अपनी-अपनी खुराक समझ रहा है तो वे अलग ही क्यों न संगठित हो जाएं? इस विचार के अमल में अंग्रेजी सरकार का कोई हाथ हो अथवा न हो लेकिन इतना अवश्य है कि इस प्रचार में सरकारी मशीनरी का काफी हाथ था। 'आदि धर्म मण्डल जैसे संगठन उस विचार के प्रचार का परिणाम हैं।

अब एक सवाल और उठता है कि इस समस्या का सही निदान क्या हो? इसका जबाब बड़ा अहम है। सबसे पहले यह निर्णय कर लेना चाहिए कि सब इन्सान समान हैं तथा न तो जन्म से कोई भिन्न पैदा हुआ और न कार्य-विभाजन से। अर्थात् क्योंकि एक आदमी गरीब मेहतर के घर पैदा हो गया है, इसलिए जीवन भर मैला ही साफ करेगा और दुनिया में किसी तरह के विकास का काम पाने का उसे कोई हक नहीं है, ये बातें फिजूल हैं। इस तरह हमारे पूर्वज आर्यों ने इनके साथ ऐसा अन्यायपूर्ण व्यवहार किया तथा उन्हें नीच कह कर दुत्कार दिया एवं निम्नकोटि के कार्य करवाने लगे। साथ ही यह भी चिन्ता हुई कि कहीं ये विद्रोह न कर दें, तब पुनर्जन्म के दर्शन का प्रचार कर दिया कि यह तुम्हारे पूर्व जन्म के पापों का फल है। अब क्या हो सकता है? चुपचाप दिन गुजारो! इस तरह उन्हें धैर्य का उपदेश देकर वे लोग उन्हें लम्बे समय तक के लिए शान्त करा गए। लेकिन उन्होंने बड़ा पाप किया। मानव के भीतर की मानवीयता को समाप्त कर दिया। आत्मविश्वास एवं स्वावलम्बन की भावनाओं को समाप्त कर दिया। बहुत दमन और अन्याय किया गया। आज उस सबके प्रायश्चित का वक्त है।

इसके साथ एक दूसरी गड़बड़ी हो गयी। लोगों के मनों में आवश्यक कार्यों के प्रति घृणा पैदा हो गई। हमने जुलाहे को भी दुत्कारा। आज कपड़ा बुनने वाले भी अछूत समझे जाते हैं। यू. पी. की तरफ कहार को भी अछूत समझा जाता है। इससे बड़ी गड़बड़ी पैदा हुई। ऐसे में विकास की प्रक्रिया में रुकावटें पैदा हो रही हैं।

इन तबकों को अपने समक्ष रखते हुए हमें चाहिए कि हम न इन्हें अछूत कहें और न समझें। बस, समस्या हल हो जाती है। नौजवान भारत सभा तथा नौजवान कांग्रेस ने जो ढंग अपनाया है वह काफी अच्छा है। जिन्हें आज तक अछूत कहा जाता रहा उनसे अपने इन पापों के लिए क्षमायाचना करनी चाहिए तथा उन्हें अपने जैसा इन्सान समझना, बिना अमृत छकाए, बिना कलमा पढ़ाए या शुद्धि किए उन्हें अपने में शामिल करके उनके हाथ से पानी पीना, यही उचित ढंग है। और आपस में खींचतान करना और व्यवहार में कोई भी हक न देना, कोई ठीक बात नहीं है।

जब गाँवों में मजदूर-प्रचार शुरू हुआ उस समय किसानों को सरकारी

आदमी यह बात समझा कर भड़काते थे कि देखो, यह भंगी-चमारों को सिर पर चढ़ा रहे हैं और तुम्हारा काम बंद करवाएंगे। बस किसान इतने में ही भड़क गए। उन्हें याद रहना चाहिए कि उनकी हालत तब तक नहीं सुधर सकती जब तक कि वे इन गरीबों को नीच और कमीन कह कर अपनी जूती के नीचे दबाए रखना चाहते हैं। अक्सर कहा जाता है कि वह साफ नहीं रहते। इसका उत्तर साफ है—वे गरीब हैं। गरीबी का इलाज करो। ऊँचे-ऊँचे कुलों के गरीब लोग भी कोई कम गन्दे नहीं रहते। गन्दे काम करने का बहाना भी नहीं चल सकता, क्योंकि माताएँ बच्चों का मैला साफ करने से मेहतर तथा अछूत तो नहीं हो जातीं।

लेकिन यह काम उतने समय तक नहीं हो सकता जितने समय तक कि अछूत कौमें अपने आपको संगठित न कर लें। हम तो समझते हैं कि उनका स्वयं को अलग संगठनबद्ध करना तथा मुस्लिमों के बराबर गिनती में होने के कारण उनके बराबर अधिकारों की माँग करना बहुत आशाजनक संकेत हैं। या तो साम्प्रदायिक भेद को झंझट ही खत्म करो, नहीं तो उनके अलग अधिकार उन्हें दे दो। कौंसिलों और असेम्बलियों का कर्तव्य है कि वे स्कूल-कालेज, कुएँ तथा सड़क के उपयोग की पूरी स्वतन्त्रता उन्हें दिलाएं। जबानी तौर पर ही नहीं, वरन साथ ले जाकर उन्हें कुओं पर चढ़ाएं। उनके बच्चों को स्कूलों में प्रवेश दिलाएं। लेकिन जिस लेजिस्लेटिव में बालविवाह के विरुद्ध पेश किए बिल तथा मजहब के बहाने हाय-तौबा मचाई जाती है, वहाँ वे अछूतों को अपने साथ शामिल करने का साहस कैसे कर सकते हैं?

इसलिए हम मानते हैं कि उनके अपने जन-प्रतिनिधि हों। वे अपने लिए अधिक अधिकार माँगें। हम तो साफ कहते हैं कि उठो, अछूत कहलाने वाले असली जनसेवको तथा भाइयो! उठो! अपना इतिहास देखो। गुरु गोविन्दसिंह की फौज की असली शक्ति तुम्हीं थे! शिवाजी तुम्हारे भरोसे पर ही सब कुछ कर सके, जिस कारण उनका नाम आज भी जिन्दा है। तुम्हारी कुर्बानियां स्वर्णाक्षरों में लिखी हुई हैं। तुम जो नित्यप्रति सेवा करके जनता के सुखों में बढ़ोतरी करके और जिन्दगी संभव बना कर यह बड़ा भारी अहसान कर रहे हो, उसे हम लोग नहीं समझते। लैण्ड-एलियेनेशन एक्ट के अनुसार तुम धन एकत्र कर भी जमीन नहीं खरीद सकते। तुम पर इतना जुल्म हो रहा है कि मिस मेयो मनुष्यों से भी कहती हैं—उठो, अपनी शक्ति पहचानो। संगठनबद्ध हो जाओ। असल में स्वयं कोशिश किए बिना कुछ भी न मिल सकेगा। (Those who would be free must themselves strike the blow.) स्वतन्त्रता के लिए स्वाधीनता चाहने वालों को यत्न करना चाहिए। इन्सान की धीरे-धीरे कुछ ऐसी आदतें हो

गई हैं कि वह अपने लिए तो अधिक अधिकार चाहता है, लेकिन जो उनके मातहत हैं उन्हें वह अपनी जूती के नीचे ही दबाए रखना चाहता है। कहावत है— 'लातों के भूत बातों से नहीं मानते'। अर्थात् संगठनबद्ध हो अपने पैरों पर खड़े होकर पूरे समाज को चुनौती दे दो। तब देखना, कोई भी तुम्हें तुम्हारे अधिकार देने से इन्कार करने की जुर्रत न कर सकेगा। तुम दूसरों की खुराक मत बनो। दूसरों के मुँह की ओर न ताको। लेकिन ध्यान रहे, नौकरशाही के झाँसे में मत फँसना। यह तुम्हारी कोई सहायता नहीं करना चाहती, बल्कि तुम्हें अपना मोहरा बनाना चाहती है। यही पूँजीवादी नौकरशाही तुम्हारी गुलामी और गरीबी का असली कारण है। इसलिए तुम उसके साथ कभी न मिलना। उसकी चालों से बचना। तब सब कुछ ठीक हो जायेगा। तुम असली सर्वहारा हो... संगठनबद्ध हो जाओ। तुम्हारी कुछ भी हानि न होगी। बस गुलामी की जंजीरें कट जाएंगी। उठो, और वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध बगावत खड़ी कर दो। धीरे-धीरे होने वाले सुधारों से कुछ नहीं बन सकेगा। सामाजिक आन्दोलन से क्रांति पैदा कर दो तथा राजनीतिक और आर्थिक क्रांति के लिए कमर कस लो। तुम ही तो देश का मुख्य आधार हो, वास्तविक शक्ति हो। सोए हुए शेरो! उठो और बगावत खड़ी कर दो।

मैं नास्तिक क्यों हूँ?

यह लेख भगत सिंह ने जेल में रहते हुए लिखा था और यह 27 सितम्बर 1931 को लाहौर के अखबार 'द पीपल' में प्रकाशित हुआ। इस लेख में भगतसिंह ने ईश्वर कि उपस्थिति पर अनेक तर्कपूर्ण सवाल खड़े किये हैं और इस संसार के निर्माण, मनुष्य के जन्म, मनुष्य के मन में ईश्वर की कल्पना के साथ-साथ संसार में मनुष्य की दीनता, उसके शोषण, दुनिया में व्याप्त अराजकता और और वर्गभेद की स्थितियों का भी विश्लेषण किया है। यह भगत सिंह के लेखन के सबसे चर्चित हिस्सों में रहा है।

स्वतन्त्रता सेनानी बाबा रणधीर सिंह 1930-31 के बीच लाहौर के सेन्ट्रल जेल में कैद थे। वे एक धार्मिक व्यक्ति थे जिन्हें यह जान कर बहुत कष्ट हुआ कि भगतसिंह का ईश्वर पर विश्वास नहीं है। वे किसी तरह भगत सिंह की कालकोठरी में पहुँचने में सफल हुए और उन्हें ईश्वर के अस्तित्व पर यकीन दिलाने की कोशिश की। असफल होने पर बाबा ने नाराज होकर कहा, 'प्रसिद्धि से तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है और तुम अहंकारी बन गए हो जो कि एक काले पर्दे के तरह तुम्हारे और ईश्वर के बीच खड़ी है।' इस टिप्पणी के जवाब में ही भगतसिंह ने यह लेख लिखा।

एक नया प्रश्न उठ खड़ा हुआ है। क्या मैं किसी अहंकार के कारण सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी तथा सर्वज्ञानी ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करता हूँ? मेरे कुछ दोस्त—शायद ऐसा कहकर मैं उन पर बहुत अधिकार नहीं जमा रहा हूँ—मेरे साथ अपने थोड़े से सम्पर्क में इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये उत्सुक हैं कि मैं ईश्वर के अस्तित्व को नकार कर कुछ ज़रूरत से ज़्यादा आगे जा रहा हूँ और

मेरे घमण्ड ने कुछ हद तक मुझे इस अविश्वास के लिये उकसाया है। मैं ऐसी कोई शेखी नहीं बघारता कि मैं मानवीय कमज़ोरियों से बहुत ऊपर हूँ। मैं एक मनुष्य हूँ, और इससे अधिक कुछ नहीं। कोई भी इससे अधिक होने का दावा नहीं कर सकता। यह कमज़ोरी मेरे अन्दर भी है। अहंकार भी मेरे स्वभाव का अंग है। अपने कामरेडों के बीच मुझे निरंकुश कहा जाता था। यहाँ तक कि मेरे दोस्त श्री बटुकेश्वर कुमार दत्त भी मुझे कभी-कभी ऐसा कहते थे। कई मौकों पर स्वेच्छाचारी कह मेरी निन्दा भी की गयी। कुछ दोस्तों को शिकायत है, और गम्भीर रूप से है कि मैं अनचाहे ही अपने विचार, उन पर थोपता हूँ और अपने प्रस्तावों को मनवा लेता हूँ। यह बात कुछ हद तक सही है। इससे मैं इनकार नहीं करता। इसे अहंकार कहा जा सकता है। जहाँ तक अन्य प्रचलित मतों के मुकाबले हमारे अपने मत का सवाल है। मुझे निश्चय ही अपने मत पर गर्व है। लेकिन यह व्यक्तिगत नहीं है। ऐसा हो सकता है कि यह केवल अपने विश्वास के प्रति न्यायोचित गर्व हो और इसको घमण्ड नहीं कहा जा सकता। घमण्ड तो स्वयं के प्रति अनुचित गर्व की अधिकता है। क्या यह अनुचित गर्व है, जो मुझे नास्तिकता की ओर ले गया? अथवा इस विषय का खूब सावधानी से अध्ययन करने और उस पर खूब विचार करने के बाद मैंने ईश्वर पर अविश्वास किया?

मैं यह समझने में पूरी तरह से असफल रहा हूँ कि अनुचित गर्व या वृथा अभिमान किस तरह किसी व्यक्ति के ईश्वर में विश्वास करने के रास्ते में रोड़ा बन सकता है? किसी वास्तव में महान व्यक्ति की महानता को मैं मान्यता न दूँ—यह तभी हो सकता है, जब मुझे भी थोड़ा ऐसा यश प्राप्त हो गया हो जिसके या तो मैं योग्य नहीं हूँ या मेरे अन्दर वे गुण नहीं हैं, जो इसके लिये आवश्यक हैं। यहाँ तक तो समझ में आता है। लेकिन यह कैसे हो सकता है कि एक व्यक्ति, जो ईश्वर में विश्वास रखता हो, सहसा अपने व्यक्तिगत अहंकार के कारण उसमें विश्वास करना बन्द कर दे? दो ही रास्ते सम्भव हैं। या तो मनुष्य अपने को ईश्वर का प्रतिद्वन्द्वी समझने लगे या वह स्वयं को ही ईश्वर मानना शुरू कर दे। इन दोनो ही अवस्थाओं में वह सच्चा नास्तिक नहीं बन सकता। पहली अवस्था में तो वह अपने प्रतिद्वन्द्वी के अस्तित्व को नकारता ही नहीं है। दूसरी अवस्था में भी वह एक ऐसी चेतना के अस्तित्व को मानता है, जो पर्दे के पीछे से प्रकृति की सभी गतिविधियों का संचालन करती है। मैं तो उस सर्वशक्तिमान परम आत्मा के अस्तित्व से ही इनकार करता हूँ। यह अहंकार नहीं है, जिसने मुझे नास्तिकता के सिद्धान्त को ग्रहण करने के लिये प्रेरित

किया। मैं न तो एक प्रतिद्वन्द्वी हूँ, न ही एक अवतार और न ही स्वयं परमात्मा। इस अभियोग को अस्वीकार करने के लिये आइए तथ्यों पर गौर करें। मेरे इन दोस्तों के अनुसार, दिल्ली बम केस और लाहौर षडयन्त्र केस के दौरान मुझे जो अनावश्यक यश मिला, शायद उस कारण मैं वृथाभिमानी हो गया हूँ।

मेरा नास्तिकतावाद कोई अभी हाल की उत्पत्ति नहीं है। मैंने तो ईश्वर पर विश्वास करना तब छोड़ दिया था, जब मैं एक अप्रसिद्ध नौजवान था। कम-से-कम एक कॉलेज का विद्यार्थी तो ऐसे किसी अनुचित अहंकार को नहीं पाल-पोस सकता, जो उसे नास्तिकता की ओर ले जाये। यद्यपि मैं कुछ अध्यापकों का चहेता था तथा कुछ अन्य को मैं अच्छा नहीं लगता था। पर मैं कभी भी बहुत मेहनती अथवा पढ़ाकू विद्यार्थी नहीं रहा। अहंकार जैसी भावना में फँसने का कोई मौका ही न मिल सका। मैं तो एक बहुत लज्जालु स्वभाव का लड़का था, जिसकी भविष्य के बारे में कुछ निराशावादी प्रकृति थी। मेरे बाबा, जिनके प्रभाव में मैं बड़ा हुआ, एक रूढ़िवादी आर्य समाजी हैं। एक आर्य समाजी और कुछ भी हो, नास्तिक नहीं होता। अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद मैंने डी.ए.वी. स्कूल, लाहौर में प्रवेश लिया और पूरे एक साल उसके छात्रावास में रहा। वहाँ सुबह और शाम की प्रार्थना के अतिरिक्त में घण्टों गायत्री मंत्र जपा करता था। उन दिनों मैं पूरा भक्त था। बाद में मैंने अपने पिता के साथ रहना शुरू किया। जहाँ तक धार्मिक रूढ़िवादिता का प्रश्न है, वह एक उदारवादी व्यक्ति हैं। उन्हीं की शिक्षा से मुझे स्वतन्त्रता के ध्येय के लिये अपने जीवन को समर्पित करने की प्रेरणा मिली। किन्तु वे नास्तिक नहीं हैं। उनका ईश्वर में दृढ़ विश्वास है। वे मुझे प्रतिदिन पूजा-प्रार्थना के लिये प्रोत्साहित करते रहते थे। इस प्रकार से मेरा पालन-पोषण हुआ। असहयोग आन्दोलन के दिनों में राष्ट्रीय कालेज में प्रवेश लिया। यहाँ आकर ही मैंने सारी धार्मिक समस्याओं— यहाँ तक कि ईश्वर के अस्तित्व के बारे में उदारतापूर्वक सोचना, विचारना तथा उसकी आलोचना करना शुरू किया। पर अभी भी मैं पक्का आस्तिक था। उस समय तक मैं अपने लम्बे बाल रखता था। यद्यपि मुझे कभी-भी सिक्ख या अन्य धर्मों की पौराणिकता और सिद्धान्तों में विश्वास न हो सका था। किन्तु मेरी ईश्वर के अस्तित्व में दृढ़ निष्ठा थी। बाद में मैं क्रांतिकारी पार्टी से जुड़ा। वहाँ जिस पहले नेता से मेरा सम्पर्क हुआ वे तो पक्का विश्वास न होते हुए भी ईश्वर के अस्तित्व को नकारने का साहस ही नहीं कर सकते थे। ईश्वर के बारे में मेरे हठ पूर्वक पूछते रहने पर वे कहते, ''जब इच्छा हो, तब पूजा कर लिया

करो।'' यह नास्तिकता है, जिसमें साहस का अभाव है। दूसरे नेता, जिनके मैं सम्पर्क में आया, पक्के श्रद्धालु आदरणीय कामरेड शचीन्द्र नाथ सान्याल आजकल काकोरी षडयन्त्र केस के सिलसिले में आजीवन कारवास भोग रहे हैं। उनकी पुस्तक 'बन्दी जीवन' ईश्वर की महिमा का जोर-शोर से गान है। उन्होंने उसमें ईश्वर के ऊपर प्रशंसा के पुष्प रहस्यात्मक वेदान्त के कारण बरसाये हैं। 28 जनवरी, 1925 को पूरे भारत में जो 'दि रिवोल्यूशनरी' (क्रांतिकारी) पर्चा बाँटा गया था, वह उन्हीं के बौद्धिक श्रम का परिणाम है। उसमें सर्वशक्तिमान और उसकी लीला एवं कार्यों की प्रशंसा की गयी है। मेरा ईश्वर के प्रति अविश्वास का भाव क्रांतिकारी दल में भी प्रस्फुटित नहीं हुआ था। काकोरी के सभी चार शहीदों ने अपने अन्तिम दिन भजन-प्रार्थना में गुजारे थे। राम प्रसाद 'बिस्मिल' एक रूढ़िवादी आर्य समाजी थे। समाजवाद तथा साम्यवाद में अपने वृहद अध्ययन के बावजूद राजन लाहड़ी उपनिषद एवं गीता के श्लोकों के उच्चारण की अपनी अभिलाषा को दबा न सके। मैंने उन सब मे सिर्फ एक ही व्यक्ति को देखा, जो कभी प्रार्थना नहीं करता था और कहता था, ''दर्शन शास्त्र मनुष्य की दुर्बलता अथवा ज्ञान के सीमित होने के कारण उत्पन्न होता है।'' वह भी आजीवन निर्वासन की सजा भोग रहा है। परन्तु उसने भी ईश्वर के अस्तित्व को नकारने की कभी हिम्मत नहीं की।

इस समय तक मैं केवल एक रोमान्टिक आदर्शवादी क्रांतिकारी था। अब तक हम दूसरों का अनुसरण करते थे। अब अपने कन्धों पर ज़िम्मेदारी उठाने का समय आया था। यह मेरे क्रांतिकारी जीवन का एक निर्णायक बिन्दु था। 'अध्ययन' की पुकार मेरे मन के गलियारों में गूँज रही थी—विरोधियों द्वारा रखे गये तर्कों का सामना करने योग्य बनने के लिये अध्ययन करो। अपने मत के पक्ष में तर्क देने के लिये सक्षम होने के वास्ते पढ़ो। मैंने पढ़ना शुरू कर दिया। इससे मेरे पुराने विचार व विश्वास अद्भुत रूप से परिष्कृत हुए। रोमांस की जगह गम्भीर विचारों ने ली ली। न और अधिक रहस्यवाद, न ही अन्धविश्वास। यथार्थवाद हमारा आधार बना। मुझे विश्वक्रांति के अनेक आदर्शों के बारे में पढ़ने का खूब मौका मिला। मैंने अराजकतावादी नेता बाकुनिन को पढ़ा, कुछ साम्यवाद के पिता मार्क्स को, किन्तु अधिक लेनिन, त्रोत्स्की, व अन्य लोगों को पढ़ा, जो अपने देश में सफलतापूर्वक क्रांति लाये थे। ये सभी नास्तिक थे। बाद में मुझे निरलम्ब स्वामी की पुस्तक 'सहज ज्ञान' मिली। इसमें रहस्यवादी नास्तिकता थी। 1926 के अन्त तक मुझे इस बात का विश्वास हो गया कि एक सर्वशक्तिमान परम आत्मा की बात, जिसने ब्रह्माण्ड का सृजन,

दिग्दर्शन और संचालन किया, एक कोरी बकवास है। मैंने अपने इस अविश्वास को प्रदर्शित किया। मैंने इस विषय पर अपने दोस्तों से बहस की। मैं एक घोषित नास्तिक हो चुका था।

मई 1927 में मैं लाहौर में गिरफ़्तार हुआ। रेलवे पुलिस हवालात में मुझे एक महीना काटना पड़ा। पुलिस अफ़सरों ने मुझे बताया कि मैं लखनऊ में था, जब वहाँ काकोरी दल का मुकदमा चल रहा था, कि मैंने उन्हें छुड़ाने की किसी योजना पर बात की थी, कि उनकी सहमति पाने के बाद हमने कुछ बम प्राप्त किये थे, कि 1927 में दशहरा के अवसर पर उन बमों में से एक परीक्षण के लिये भीड़ पर फेंका गया, कि यदि मैं क्रांतिकारी दल की गतिविधियों पर प्रकाश डालने वाला एक वक्तव्य दे दूँ, तो मुझे गिरफ़्तार नहीं किया जायेगा और इसके विपरीत मुझे अदालत में मुखबिर की तरह पेश किये बगैर रिहा कर दिया जायेगा और इनाम दिया जायेगा। मैं इस प्रस्ताव पर हँसा। यह सब बेकार की बात थी। हम लोगों की भाँति विचार रखने वाले अपनी निर्दोष जनता पर बम नहीं फेंका करते। एक दिन सुबह सी.आई.डी. के वरिष्ठ अधीक्षक श्री न्यूमन ने कहा कि यदि मैंने वैसा वक्तव्य नहीं दिया, तो मुझ पर काकोरी केस से सम्बन्धित विद्रोह छेड़ने के षडयन्त्र तथा दशहरा उपद्रव में क्रूर हत्याओं के लिये मुकदमा चलाने पर बाध्य होंगे और कि उनके पास मुझे सजा दिलाने व फाँसी पर लटकवाने के लिये उचित प्रमाण हैं। उसी दिन से कुछ पुलिस अफ़सरों ने मुझे नियम से दोनों समय ईश्वर की स्तुति करने के लिये फुसलाना शुरू किया। पर अब मैं एक नास्तिक था। मैं स्वयं के लिये यह बात तय करना चाहता था कि क्या शान्ति और आनन्द के दिनों में ही मैं नास्तिक होने का दम्भ भरता हूँ या ऐसे कठिन समय में भी मैं उन सिद्धान्तों पर अडिग रह सकता हूँ। बहुत सोचने के बाद मैंने निश्चय किया कि किसी भी तरह ईश्वर पर विश्वास तथा प्रार्थना मैं नहीं कर सकता। नहीं, मैंने एक क्षण के लिये भी नहीं की। यही असली परीक्षण था और मैं सफल रहा। अब मैं एक पक्का अविश्वासी था और तब से लगातार हूँ। इस परीक्षण पर खरा उतरना आसान काम न था। 'विश्वास' कष्टों को हलका कर देता है। यहाँ तक कि उन्हें सुखकर बना सकता है। ईश्वर में मनुष्य को अत्यधिक सान्त्वना देने वाला एक आधार मिल सकता है। उसके बिना मनुष्य को अपने ऊपर निर्भर करना पड़ता है। तूफ़ान और झंझावात के बीच अपने पाँवों पर खड़ा रहना कोई बच्चों का खेल नहीं है। परीक्षा

की इन घड़ियों में अहंकार यदि है, तो भाप बन कर उड़ जाता है और मनुष्य अपने विश्वास को ठुकराने का साहस नहीं कर पाता। यदि ऐसा करता है, तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उसके पास सिर्फ़ अहंकार नहीं वरन् कोई अन्य शक्ति है। आज बिलकुल वैसी ही स्थिति है। निर्णय का पूरा-पूरा पता है। एक सप्ताह के अन्दर ही यह घोषित हो जायेगा कि मैं अपना जीवन एक ध्येय पर न्योछावर करने जा रहा हूँ। इस विचार के अतिरिक्त और क्या सांतवना हो सकती है? ईश्वर में विश्वास रखने वाला हिंदू पुनर्जन्म पर राजा होने की आशा कर सकता है। एक मुसलमान या ईसाई स्वर्ग में व्याप्त समृद्धि के आनन्द की तथा अपने कष्टों और बलिदान के लिये पुरस्कार की कल्पना कर सकता है। किन्तु मैं क्या आशा करूँ? मैं जानता हूँ कि जिस क्षण रस्सी का फ़न्दा मेरी गर्दन पर लगेगा और मेरे पैरों के नीचे से तख़्ता हटेगा, वह पूर्ण विराम होगा—वह अन्तिम क्षण होगा। मैं या मेरी आत्मा सब वहीं समाप्त हो जायेगी। आगे कुछ न रहेगा। एक छोटी सी जूझती हुई ज़िन्दगी, जिसकी कोई ऐसी गौरवशाली परिणति नहीं है, अपने में स्वयं एक पुरस्कार होगी—यदि मुझमें इस दृष्टि से देखने का साहस हो। बिना किसी स्वार्थ के यहाँ या यहाँ के बाद पुरस्कार की इच्छा के बिना, मैंने अनासक्त भाव से अपने जीवन को स्वतन्त्रता के ध्येय पर समर्पित कर दिया है, क्योंकि मैं और कुछ कर ही नहीं सकता था। जिस दिन हमें इस मनोवृत्ति के बहुत-से पुरुष और महिलाएँ मिल जायेंगे, जो अपने जीवन को मनुष्य की सेवा और पीड़ित मानवता के उद्धार के अतिरिक्त कहीं समर्पित कर ही नहीं सकते, उसी दिन मुक्ति के युग का शुभारम्भ होगा। वे शोषकों, उत्पीड़कों और अत्याचारियों को चुनौती देने के लिये उत्प्रेरित होंगे। इसलिये नहीं कि उन्हें राजा बनना है या कोई अन्य पुरस्कार प्राप्त करना है यहाँ या अगले जन्म में या मृत्योपरान्त स्वर्ग में। उन्हें तो मानवता की गर्दन से दासता का जुआ उतार फेंकने और मुक्ति एवं शान्ति स्थापित करने के लिये इस मार्ग को अपनाना होगा। क्या वे उस रास्ते पर चलेंगे जो उनके अपने लिये ख़तरनाक किन्तु उनकी महान आत्मा के लिये एक मात्र कल्पनीय रास्ता है। क्या इस महान ध्येय के प्रति उनके गर्व को अहंकार कहकर उसका गलत अर्थ लगाया जायेगा? कौन इस प्रकार के घृणित विशेषण बोलने का साहस करेगा? या तो वह मूर्ख है या धूर्त। हमें चाहिए कि उसे क्षमा कर दें, क्योंकि वह उस हृदय में उद्वेलित उच्च विचारों, भावनाओं, आवेगों तथा उनकी गहराई को महसूस नहीं कर

सकता। उसका हृदय मांस के एक टुकड़े की तरह मृत है। उसकी आँखों पर अन्य स्वार्थों के प्रेतों की छाया पड़ने से वे कमज़ोर हो गयी हैं। स्वयं पर भरोसा रखने के गुण को सदैव अहंकार की संज्ञा दी जा सकती है। यह दुखपूर्ण और कष्टप्रद है, पर चारा ही क्या है?

आलोचना और स्वतन्त्र विचार एक क्रांतिकारी के दोनों अनिवार्य गुण हैं। क्योंकि हमारे पूर्वजों ने किसी परम आत्मा के प्रति विश्वास बना लिया था। अत: कोई भी व्यक्ति जो उस विश्वास को सत्यता या उस परम आत्मा के अस्तित्व को ही चुनौती दे, उसको विधर्मी, विश्वासघाती कहा जायेगा। यदि उसके तर्क इतने अकाट्य हैं कि उनका खण्डन वितर्क द्वारा नहीं हो सकता और उसकी आस्था इतनी प्रबल है कि उसे ईश्वर के प्रकोप से होने वाली विपत्तियों का भय दिखा कर दबाया नहीं जा सकता तो उसकी यह कह कर निन्दा की जायेगी कि वह वृथाभिमानी है। यह मेरा अहंकार नहीं था, जो मुझे नास्तिकता की ओर ले गया। मेरे तर्क का तरीका संतोषप्रद सिद्ध होता है या नहीं इसका निर्णय मेरे पाठकों को करना है, मुझे नहीं। मैं जानता हूँ कि ईश्वर पर विश्वास ने आज मेरा जीवन आसान और मेरा बोझ हलका कर दिया होता। उस पर मेरे अविश्वास ने सारे वातावरण को अत्यन्त शुष्क बना दिया है। थोड़ा-सा रहस्यवाद इसे कवित्वमय बना सकता है। किन्तु मेरे भाग्य को किसी उन्माद का सहारा नहीं चाहिए। मैं यथार्थवादी हूँ। मैं अन्त: प्रकृति पर विवेक की सहायता से विजय चाहता हूँ। इस ध्येय में मैं सदैव सफल नहीं हुआ हूँ। प्रयास करना मनुष्य का कर्तव्य है। सफलता तो संयोग तथा वातावरण पर निर्भर है। कोई भी मनुष्य, जिसमें तनिक भी विवेक शक्ति है, वह अपने वातावरण को तार्किक रूप से समझना चाहेगा। जहाँ सीधा प्रमाण नहीं है, वहाँ दर्शन शास्त्र का महत्व है। जब हमारे पूर्वजों ने फुरसत के समय विश्व के रहस्य को, इसके भूत, वर्तमान एवं भविष्य को, इसके क्यों और कहाँ से को समझने का प्रयास किया तो सीधे परिणामों के कठिन अभाव में हर व्यक्ति ने इन प्रश्नों को अपने ढंग से हल किया। यही कारण है कि विभिन्न धार्मिक मतों में हमको इतना अन्तर मिलता है, जो कभी-कभी वैमनस्य तथा झगड़े का रूप ले लेता है। न केवल पूर्व और पश्चिम के दर्शनों में मतभेद है, बल्कि प्रत्येक गोलार्ध के अपने विभिन्न मतों में आपस में अन्तर है। पूर्व के धर्मों में, इस्लाम तथा हिंदू धर्म में ज़रा भी अनुरूपता नहीं है। भारत में ही बौद्ध तथा जैन धर्म उस ब्राह्मणवाद से बहुत अलग है, जिसमें स्वयं आर्यसमाज व सनातन धर्म जैसे विरोधी मत पाये जाते हैं। पुराने समय का एक स्वतन्त्र विचारक चार्वाक है। उसने ईश्वर को पुराने

समय में ही चुनौती दी थी। हर व्यक्ति अपने को सही मानता है। दुर्भाग्य की बात है कि बजाय पुराने विचारकों के अनुभवों तथा विचारों को भविष्य में अज्ञानता के विरुद्ध लड़ाई का आधार बनाने के हम आलसियों की तरह, जो हम सिद्ध हो चुके हैं, उनके कथन में अविचल एवं संशयहीन विश्वास की चीख पुकार करते रहते हैं और इस प्रकार मानवता के विकास को जड़ बनाने के दोषी हैं।

सिर्फ विश्वास और अन्ध विश्वास खतरनाक है। यह मस्तिष्क को मूढ़ और मनुष्य को प्रतिक्रियावादी बना देता है। जो मनुष्य अपने को यथार्थवादी होने का दावा करता है, उसे समस्त प्राचीन रूढ़िगत विश्वासों को चुनौती देनी होगी। प्रचलित मतों को तर्क की कसौटी पर कसना होगा। यदि वे तर्क का प्रहार न सह सके, तो टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ेगा। तब नये दर्शन की स्थापना के लिये उनको पूरा धराशायी करके जगह साफ करना और पुराने विश्वासों की कुछ बातों का प्रयोग करके पुनर्निर्माण करना। मैं प्राचीन विश्वासों के ठोसपन पर प्रश्न करने के सम्बन्ध में आश्वस्त हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि एक चेतन परम आत्मा का, जो प्रकृति की गति का दिग्दर्शन एवं संचालन करता है, कोई अस्तित्व नहीं है। हम प्रकृति में विश्वास करते हैं और समस्त प्रगतिशील आन्दोलन का ध्येय मनुष्य द्वारा अपनी सेवा के लिये प्रकृति पर विजय प्राप्त करना मानते हैं। इसको दिशा देने के पीछे कोई चेतन शक्ति नहीं है। यही हमारा दर्शन है। हम आस्तिकों से कुछ प्रश्न करना चाहते हैं।

यदि आपका विश्वास है कि एक सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और सर्वज्ञानी ईश्वर है, जिसने विश्व की रचना की, तो कृपा करके मुझे यह बतायें कि उसने यह रचना क्यों की? कष्टों और संतापों से पूर्ण दुनिया—असंख्य दुखों के शाश्वत अनन्त गठबन्धनों से ग्रसित! एक भी व्यक्ति तो पूरी तरह संतुष्ट नही है। कृपया यह न कहें कि यही उसका नियम है। यदि वह किसी नियम से बँधा है तो वह सर्वशक्तिमान नहीं है। वह भी हमारी ही तरह नियमों का दास है। कृपा करके यह भी न कहें कि यह उसका मनोरंजन है। नीरो ने बस एक रोम जलाया था। उसने बहुत थोड़ी संख्या में लोगों की हत्या की थी। उसने तो बहुत थोड़ा दुख पैदा किया, अपने पूर्ण मनोरंजन के लिये। और उसका इतिहास में क्या स्थान है? उसे इतिहासकार किस नाम से बुलाते हैं? सभी विषैले विशेषण उस पर बरसाये जाते हैं। पन्ने उसकी निन्दा के वाक्यों से काले पुते हैं, भर्त्सना करते हैं—नीरो एक हृदयहीन, निर्दयी, दुष्ट। एक चंगेज खाँ ने अपने आनन्द के लिये कुछ हजार जानें ले लीं और आज हम उसके नाम से घृणा

करते हैं। तब किस प्रकार तुम अपने ईश्वर को न्यायोचित ठहराते हो? उस शाश्वत नीरो को, जो हर दिन, हर घण्टे और हर मिनट असंख्य दुख देता रहा, और अभी भी दे रहा है। फिर तुम कैसे उसके दुष्कर्मों का पक्ष लेने की सोचते हो, जो चंगेज खाँ से प्रत्येक क्षण अधिक है? क्या यह सब बाद में इन निर्दोष कष्ट सहने वालों को पुरस्कार और गलती करने वालों को दण्ड देने के लिये हो रहा है? ठीक है, ठीक है। तुम कब तक उस व्यक्ति को उचित ठहराते रहोगे, जो हमारे शरीर पर घाव करने का साहस इसलिये करता है कि बाद में मुलायम और आरामदायक मलहम लगायेगा? ग्लैडिएटर संस्था के व्यवस्थापक कहाँ तक उचित करते थे कि एक भूखे ख़ूंख़्वार शेर के सामने मनुष्य को फेंक दो कि, यदि वह उससे जान बचा लेता है, तो उसकी खूब देखभाल की जायेगी? इसलिये मैं पूछता हूँ कि उस चेतन परम आत्मा ने इस विश्व और उसमें मनुष्यों की रचना क्यों की? आनन्द लूटने के लिये? तब उसमें और नीरो में क्या फर्क है?

तुम मुसलमानो और ईसाइयो! तुम तो पूर्वजन्म में विश्वास नहीं करते। तुम तो हिंदुओं की तरह यह तर्क पेश नहीं कर सकते कि प्रत्यक्षत: निर्दोष व्यक्तियों के कष्ट उनके पूर्वजन्मों के कर्मों का फल है। मैं तुमसे पूछता हूँ कि उस सर्वशक्तिशाली ने शब्द द्वारा विश्व के उत्पत्ति के लिये छ: दिन तक क्यों परिश्रम किया? और प्रत्येक दिन वह क्यों कहता है कि सब ठीक है? बुलाओ उसे आज। उसे पिछला इतिहास दिखाओ। उसे आज की परिस्थितियों का अध्ययन करने दो। हम देखेंगे कि क्या वह कहने का साहस करता है कि सब ठीक है। कारावास की काल-कोठरियों से लेकर झोपड़ियों की बस्तियों तक भूख से तड़पते लाखों इन्सानों से लेकर उन शोषित मज़दूरों से लेकर जो पूँजीवादी पिशाच द्वारा खून चूसने की क्रिया को धैर्यपूर्वक निरुत्साह से देख रहे हैं तथा उस मानवशक्ति की बर्बादी देख रहे हैं, जिसे देखकर कोई भी व्यक्ति, जिसे तनिक भी सहज ज्ञान है, भय से सिहर उठेगा, और अधिक उत्पादन को ज़रूरतमन्द लोगों में बाँटने के बजाय समुद्र में फेंक देना बेहतर समझने से लेकर राजाओं के उन महलों तक जिनकी नींव मानव की हड्डियों पर पड़ी है—उसको यह सब देखने दो और फिर कहे—सब कुछ ठीक है! क्यों और कहाँ से? यही मेरा प्रश्न है। तुम चुप हो। ठीक है, तो मैं आगे चलता हूँ।

और तुम हिंदुओं, तुम कहते हो कि आज जो कष्ट भोग रहे हैं, ये पूर्वजन्म के पापी हैं और आज के उत्पीड़क पिछले जन्मों में साधु पुरुष थे, अत: वे सत्ता का आनन्द लूट रहे हैं। मुझे यह मानना पड़ता है कि आपके

पूर्वज बहुत चालाक व्यक्ति थे। उन्होंने ऐसे सिद्धान्त गढ़े, जिनमें तर्क और अविश्वास के सभी प्रयासों को विफल करने की काफ़ी ताकत है। न्यायशास्त्र के अनुसार दण्ड को अपराधी पर पड़ने वाले असर के आधार पर केवल तीन कारणों से उचित ठहराया जा सकता है। वे हैं—प्रतिकार, भय तथा सुधार। आज सभी प्रगतिशील विचारकों द्वारा प्रतिकार के सिद्धान्त की निन्दा की जाती है। भयभीत करने के सिद्धान्त का भी अन्त वहीं है। सुधार करने का सिद्धान्त ही केवल आवश्यक है और मानवता की प्रगति के लिये अनिवार्य है। इसका ध्येय अपराधी को योग्य और शान्तिप्रिय नागरिक के रूप में समाज को लौटाना है। किन्तु यदि हम मनुष्यों को अपराधी मान भी लें, तो ईश्वर द्वारा उन्हें दिये गये दण्ड की क्या प्रकृति है? तुम कहते हो वह उन्हें गाय, बिल्ली, पेड़, जड़ी-बूटी या जानवर बनाकर पैदा करता है। तुम ऐसे 84 लाख दण्डों को गिनाते हो। मैं पूछता हूँ कि मनुष्य पर इनका सुधारक के रूप में क्या असर है? तुम ऐसे कितने व्यक्तियों से मिले हो, जो यह कहते हैं कि वे किसी पाप के कारण पूर्वजन्म में गधा के रूप में पैदा हुए थे? एक भी नहीं? अपने पुराणों से उदाहरण न दो। मेरे पास तुम्हारी पौराणिक कथाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। और फिर क्या तुम्हें पता है कि दुनिया में सबसे बड़ा पाप गरीब होना है। गरीबी एक अभिशाप है। यह एक दण्ड है। मैं पूछता हूँ कि दण्ड प्रक्रिया की कहाँ तक प्रशंसा करें, जो अनिवार्यत: मनुष्य को और अधिक अपराध करने को बाध्य करे? क्या तुम्हारे ईश्वर ने यह नहीं सोचा था या उसको भी ये सारी बातें मानवता द्वारा अकथनीय कष्टों के झेलने की कीमत पर अनुभव से सीखनी थीं? तुम क्या सोचते हो, किसी गरीब या अनपढ़ परिवार, जैसे एक चमार या मेहतर के यहाँ पैदा होने पर इन्सान का क्या भाग्य होगा? चूँकि वह गरीब है, इसलिये पढ़ाई नहीं कर सकता। वह अपने साथियों से तिरस्कृत एवं परित्यक्त रहता है, जो ऊँची जाति में पैदा होने के कारण अपने को ऊँचा समझते हैं। उसका अज्ञान, उसकी गरीबी तथा उससे किया गया व्यवहार उसके हृदय को समाज के प्रति निष्ठुर बना देते हैं। यदि वह कोई पाप करता है तो उसका फल कौन भोगेगा? ईश्वर, वह स्वयं या समाज के मनीषी? और उन लोगों के दण्ड के बारे में क्या होगा, जिन्हें दम्भी ब्राह्मणों ने जानबूझ कर अज्ञानी बनाये रखा तथा जिनको तुम्हारी ज्ञान की पवित्र पुस्तकों—वेदों के कुछ वाक्य सुन लेने के कारण कान में पिघले सीसे की धारा सहन करने की सजा भुगतनी पड़ती थी? यदि वे कोई अपराध करते हैं, तो उसके लिये कौन ज़िम्मेदार होगा? और उनका प्रहार कौन सहेगा? मेरे प्रिय दोस्तों! ये सिद्धान्त विशेषाधिकार

युक्त लोगों के आविष्कार हैं। ये अपनी हथियाई हुई शक्ति, पूँजी तथा उच्चता को इन सिद्धान्तों के आधार पर सही ठहराते हैं। अपटान सिंक्लेयर ने लिखा था कि मनुष्य को बस अमरत्व में विश्वास दिला दो और उसके बाद उसकी सारी सम्पत्ति लूट लो। वह बगैर बड़बड़ाये इस कार्य में तुम्हारी सहायता करेगा। धर्म के उपदेशकों तथा सत्ता के स्वामियों के गठबन्धन से ही जेल, फाँसी, कोड़े और ये सिद्धान्त उपजते हैं।

मैं पूछता हूँ तुम्हारा सर्वशक्तिशाली ईश्वर हर व्यक्ति को क्यों नहीं उस समय रोकता है जब वह कोई पाप या अपराध कर रहा होता है? यह तो वह बहुत आसानी से कर सकता है। उसने क्यों नहीं लड़ाकू राजाओं की लड़ने की उग्रता को समाप्त किया और इस प्रकार विश्वयुद्ध द्वारा मानवता पर पड़ने वाली विपत्तियों से उसे बचाया? उसने अंग्रेजों के मस्तिष्क में भारत को मुक्त कर देने की भावना क्यों नहीं पैदा की? वह क्यों नहीं पूँजीपतियों के हृदय में यह परोपकारी उत्साह भर देता कि वे उत्पादन के साधनों पर अपना व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार त्याग दें और इस प्रकार केवल सम्पूर्ण श्रमिक समुदाय, वरन समस्त मानव समाज को पूँजीवादी बेड़ियों से मुक्त करें? आप समाजवाद की व्यावहारिकता पर तर्क करना चाहते हैं। मैं इसे आपके सर्वशक्तिमान पर छोड़ देता हूँ कि वह लागू करे। जहाँ तक सामान्य भलाई की बात है, लोग समाजवाद के गुणों को मानते हैं। वे इसके व्यावहारिक न होने का बहाना लेकर इसका विरोध करते हैं। परमात्मा को आने दो और वह चीज को सही तरीके से कर दे। अंग्रेजों की हुकूमत यहाँ इसलिये नहीं है कि ईश्वर चाहता है बल्कि इसलिये कि उनके पास ताकत है और हममें उनका विरोध करने की हिम्मत नहीं। वे हमको अपने प्रभुत्व में ईश्वर की मदद से नहीं रखे हैं, बल्कि बन्दूकों, राइफलों, बम और गोलियों, पुलिस और सेना के सहारे। यह हमारी उदासीनता है कि वे समाज के विरुद्ध सबसे निन्दनीय अपराध—एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र द्वारा अत्याचार पूर्ण शोषण— सफलतापूर्वक कर रहे हैं। कहाँ है ईश्वर? क्या वह मनुष्य जाति के इन कष्टों का मज़ा ले रहा है? एक नीरो, एक चंगेज, उसका नाश हो!

क्या तुम मुझसे पूछते हो कि मैं इस विश्व की उत्पत्ति तथा मानव की उत्पत्ति की व्याख्या कैसे करता हूँ? ठीक है, मैं तुम्हें बताता हूँ। चार्ल्स डारविन ने इस विषय पर कुछ प्रकाश डालने की कोशिश की है। उसे पढ़ो। यह एक प्रकृति की घटना है। विभिन्न पदार्थों के, निहारिका के आकार में, आकस्मिक मिश्रण से पृथ्वी बनी। कब? इतिहास देखो। इसी प्रकार की घटना से जन्तु

पैदा हुए और एक लम्बे दौर में मानव। डार्विन की 'जीव की उत्पत्ति' पढ़ो। और तदुपरान्त सारा विकास मनुष्य द्वारा प्रकृति के लगातार विरोध और उस पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा से हुआ। यह इस घटना की सम्भवत: सबसे सूक्ष्म व्याख्या है।

तुम्हारा दूसरा तर्क यह हो सकता है कि क्यों एक बच्चा अन्धा या लंगड़ा पैदा होता है? क्या यह उसके पूर्वजन्म में किये गये कार्यों का फल नहीं है? जीवविज्ञान वेत्ताओं ने इस समस्या का वैज्ञानिक समाधान निकाल लिया है। अवश्य ही तुम एक और बचकाना प्रश्न पूछ सकते हो। यदि ईश्वर नहीं है, तो लोग उसमें विश्वास क्यों करने लगे? मेरा उत्तर सूक्ष्म तथा स्पष्ट है। जिस प्रकार वे प्रेतों तथा दुष्ट आत्माओं में विश्वास करने लगे। अन्तर केवल इतना है कि ईश्वर में विश्वास विश्वव्यापी है और दर्शन अत्यन्त विकसित। इसकी उत्पत्ति का श्रेय उन शोषकों की प्रतिभा को है, जो परमात्मा के अस्तित्व का उपदेश देकर लोगों को अपने प्रभुत्व में रखना चाहते थे तथा उनसे अपनी विशिष्ट स्थिति का अधिकार एवं अनुमोदन चाहते थे। सभी धर्म, समप्रदाय, पन्थ और ऐसी अन्य संस्थाएं अन्त में निर्दयी और शोषक संस्थाओं, व्यक्तियों तथा वर्गों की समर्थक हो जाती हैं। राजा के विरुद्ध हर विद्रोह हर धर्म में सदैव ही पाप रहा है।

मनुष्य की सीमाओं को पहचानने पर, उसकी दुर्बलता व दोष को समझने के बाद परीक्षा की घड़ियों में मनुष्य को बहादुरी से सामना करने के लिये उत्साहित करने, सभी ख़तरों को पुरुषत्व के साथ झेलने तथा सम्पन्नता एवं ऐश्वर्य में उसके विस्फोट को बाँधने के लिये ईश्वर के काल्पनिक अस्तित्व की रचना हुई। अपने व्यक्तिगत नियमों तथा अभिभावकीय उदारता से पूर्ण ईश्वर की बढ़ा-चढ़ा कर कल्पना एवं चित्रण किया गया। जब उसकी उग्रता तथा व्यक्तिगत नियमों की चर्चा होती है, तो उसका उपयोग एक भय दिखाने वाले के रूप में किया जाता है। ताकि कोई मनुष्य समाज के लिये ख़तरा न बन जाये। जब उसके अभिभावक गुणों की व्याख्या होती है, तो उसका उपयोग एक पिता, माता, भाई, बहन, दोस्त तथा सहायक की तरह किया जाता है। जब मनुष्य अपने सभी दोस्तों द्वारा विश्वासघात तथा त्याग देने से अत्यन्त क्लेष में हो, तब उसे इस विचार से सांतवना मिल सकती हे कि एक सदा सच्चा दोस्त उसकी सहायता करने को है, उसको सहारा देगा तथा वह सर्वशक्तिमान है और कुछ भी कर सकता है। वास्तव में आदिम काल में यह समाज के लिये उपयोगी था। पीड़ा में पड़े मनुष्य के लिये ईश्वर की कल्पना उपयोगी होती है।

समाज को इस विश्वास के विरुद्ध लड़ना होगा। मनुष्य जब अपने पैरों पर खड़ा होने का प्रयास करता है तथा यथार्थवादी बन जाता है, तब उसे श्रद्धा को एक ओर फेंक देना चाहिए और उन सभी कष्टों, परेशानियों का पुरुषत्व के साथ सामना करना चाहिए, जिनमें परिस्थितियाँ उसे पटक सकती हैं। यही आज मेरी स्थिति है। यह मेरा अहंकार नहीं है, मेरे दोस्त! यह मेरे सोचने का तरीका है, जिसने मुझे नास्तिक बनाया है। ईश्वर में विश्वास और रोज़-ब-रोज़ की प्रार्थना को मैं मनुष्य के लिये सबसे स्वार्थी और गिरा हुआ काम मानता हूँ। मैंने उन नास्तिकों के बारे में पढ़ा है, जिन्होंने सभी विपदाओं का बहादुरी से सामना किया। अत: मैं भी एक पुरुष की भाँति फाँसी के फन्दे की अन्तिम घड़ी तक सिर ऊँचा किये खड़ा रहना चाहता हूँ।

हमें देखना है कि मैं कैसे निभा पाता हूँ। मेरे एक दोस्त ने मुझे प्रार्थना करने को कहा। जब मैंने उसे नास्तिक होने की बात बतायी तो उसने कहा, ''अपने अन्तिम दिनों में तुम विश्वास करने लगोगे।'' मैंने कहा, ''नहीं, प्यारे दोस्त, ऐसा नहीं होगा। मैं इसे अपने लिये अपमानजनक तथा भ्रष्ट होने की बात समझाता हूँ। स्वार्थी कारणों से मैं प्रार्थना नहीं करूँगा।'' पाठकों और दोस्तों, क्या यह अहंकार है? अगर है तो मैं स्वीकार करता हूँ।

शहादत से पहले साथियों को अंतिम पत्र

22 मार्च, 1931

साथियो,

स्वाभाविक है कि जीने की इच्छा मुझमें भी होनी चाहिए, मैं इसे छिपाना नहीं चाहता। लेकिन एक शर्त पर जिंदा रह सकता हूँ कि मैं कैद होकर या पाबन्द होकर जीना नहीं चाहता।

मेरा नाम हिन्दुस्तानी क्रांति का प्रतीक बन चुका है और क्रांतिकारी दल के आदर्शों और कुर्बानियों ने मुझे बहुत ऊँचा उठा दिया है—इतना ऊँचा कि जीवित रहने की स्थिति में इससे ऊँचा मैं हर्गिज नहीं हो सकता।

आज मेरी कमजोरियाँ जनता के सामने नहीं हैं। अगर मैं फाँसी से बच गया तो वे जाहिर हो जाएँगी और क्रांति का प्रतीक चिन्ह मद्धिम पड़ जाएगा या संभवत: मिट ही जाए। लेकिन दिलेराना ढंग से हँसते-हँसते मेरे फाँसी चढ़ने की सूरत में हिन्दुस्तानी माताएँ अपने बच्चों के भगतसिंह बनने की आरजू किया करेंगी और देश की आजादी के लिए कुर्बानी देने वालों की तादाद इतनी बढ़ जाएगी कि क्रांति को रोकना साम्राज्यवाद या तमाम शैतानी शक्तियों के बूते की बात नहीं रहेगी।

हाँ, एक विचार आज भी मेरे मन में आता है कि देश और मानवता के लिए जो कुछ करने की हसरतें मेरे दिल में थीं, उनका हजारवाँ भाग भी पूरा नहीं कर सका। अगर स्वतन्त्र, जिंदा रह सकता तब शायद उन्हें पूरा करने का

अवसर मिलता और मैं अपनी हसरतें पूरी कर सकता। इसके सिवाय मेरे मन में कभी कोई लालच फाँसी से बचे रहने का नहीं आया। मुझसे अधिक भाग्यशाली कौन होगा? आजकल मुझे स्वयं पर बहुत गर्व है। अब तो बड़ी बेताबी से अंतिम परीक्षा का इन्तजार है। कामना है कि यह और नजदीक हो जाए।

आपका साथी
भगतसिंह

हवा में रहेगी मेरे ख्याल की बिजली

"धार्मिक अंधविश्वास और कट्टरपन
हमारी प्रगति में बहुत बड़े बाधक हैं।
वे हमारे रास्ते के रोड़े साबित हुए हैं
और उनसे हमें हर हाल में
छुटकारा पा लेना चाहिए।
जो चीज आज़ाद विचारों को
बर्दाश्त नहीं कर सकती,
उसे समाप्त हो जाना चाहिए।

-शहीद-ए-आजम भगत सिंह

isd इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी
फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस, 62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067
टेलीफोन : 091-011-26177904, टेलीफैक्स : 091-011-26177904
ई-मेल : prakashan.isd@gmail.com, notowar.isd@gmail.com
वेबसाइट : www.isd.net.in
केवल सीमित वितरण के लिए
मुद्रण : डिजाइन एण्ड डाइमेन्शंस, एल-5 ए, शेख सराय, फेज-II, नई दिल्ली-110017